समान अधिकारों की सैंसरशिपः अभिव्यक्ति की आज़ादी को लेकर भारत की परेशानी
Equal Rights Censorship: India's Unease with Free Speech

अनुराधा रमण
Anuradha Raman
May 5, 2014

भारत पहला देश है, जिसने सन् 1988 में मुस्लिम समुदाय के नेताओं के दबाव के कारण सलमान रश्दी के उपन्यास *''द सैनेटिक वर्सेज़''* पर पाबंदी लगायी थी. अब भी भारत में पाबंदी का यह सिलसिला जारी है जिसके कारण अभिव्यक्ति की आज़ादी को लेकर परेशानी बढ़ती और गहराती जा रही है. इसके कारण यह परेशानी उस दौर में पहुँच गयी है जब संविधान को लागू हुए सत्रह महीने ही हुए थे और इसे आगे बढ़ने से रोकने के लिए कई उपाय किये गये थे. तब से लेकर अब तक आधिकारिक रूप में पच्चीस पुस्तकों पर पाबंदी लगायी जा चुकी है. इनमें प्रमुख हैं.जोज़ेफ़ लेलीवेल्ड की *ग्रेट सोल, महात्मा गाँधी*, जेम्स लेन की *शिवाजीः हिंदू किंग इन इस्लामिक वर्ल्ड* और ऑब्रे मेनन की *द रामायण.*

पचास के दशक में सभी प्रकार की विचारधाराओं से जुड़ी प्रकाशित सामग्री पर नियंत्रण लगाने की ऊहापोह बनी रही. यह बात विचारणीय है कि जिन लोगों ने भारत की आज़ादी के लिए जबर्दस्त संघर्ष किया था, उन्होंने संविधान बनाते समय अभिव्यक्ति की आज़ादी के अधिकार को संविधान में विशेष स्थान दिलाने के लिए भी उतना ही संघर्ष किया. फिर भी प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरू, वल्लभ भाई पटेल और अन्य राजनेताओं को अभिव्यक्ति की आज़ादी को लेकर असली चुनौती वामपंथी और दक्षिणपंथी प्रैस से ही मिली थी. अमेरिका में जो पहला संशोधन किया गया था, वह अभिव्यक्ति की आज़ादी पर पाबंदी लगाने का ही था, जबकि भारत के संविधान में पहला संशोधन अभिव्यक्ति की आज़ादी पर पाबंदी लगाने का नहीं था.

भारत के संविधान में किये गये पहले संशोधन को लेकर वामपंथी और दक्षिणपंथी दलों में भारी विवाद हुआ था और विवाद के प्रमुख मुद्दे थे, देश की सुरक्षा के हित में राज्यों को कानून बनाने के विशेषाधिकार दिये जाएँ, विदेशों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध रखे जाएँ, न्यायालयों की अवमानना को लेकर सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता और नैतिकता का निर्वाह किया जाए और मानहानि और उकसाने की कार्रवाई को अपराध माना जाए. इसके अलावा पचास के दशक से पाबंदी की माँग करने वाले लोगों में अंतर आने लगा है. राज्य तो पुस्तकों पर पाबंदी लगाते ही थे, लेकिन अब प्रकाशक, धार्मिक संगठन, जातीय संगठन और कॉर्पोरेट जगत् के लोग भी सिर्फ़ आपत्तिजनक पुस्तकों पर ही नहीं, आपत्तिजनक फ़िल्मों, नाटकों और संगीत पर भी पाबंदी लगाने की माँग करने लगे हैं. कई रूपों में तो पहले संशोधन ने ही किसी भी बात को आपत्तिजनक बताने और फिर उस पर पाबंदी लगाने की माँग को भी विधिसम्मत मान लिया है.

तीन महीने के अंदर ही पाँच पुस्तकें भारतीय बुक स्टोर से गायब हो गयी हैं. ये पुस्तकें हैं, कॉर्पोरेट, धर्म और जाति को लेकर. वैंडी डॉनिगर द्वारा लिखित *द हिंदूज़ः ऐन अल्टरनेटिव हिस्ट्री* की तो सभी प्रतियों को ही नष्ट कर दिया गया, जिसके कारण एक बार फिर से यह प्रश्न हमारे सामने आ खड़ा हुआ है कि किसी भी पुस्तक पर पाबंदी की माँग करने वाले अधिकांश लोग किसका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं? भारत में कारोबारी घरानों में सबसे बड़े घराने रिलाएंस ने *गैस वार्सः क्रॉनी कैपिटलिज़्म ऐंड द अम्बानीज़* के लेखक के खिलाफ़ कानूनी मुकदमा चलाया है और उन्हें यह पुस्तक वापस लेने के लिए कहा है और अगर वे ऐसा नहीं करते तो उन पर मानहानि के लिए आपराधिक और सिविल अभियोग लगाने की धमकी दी है.

दिल्ली के एक प्रकाशक नवयान ने लेखक द्वारा अपने-आपको भारत के भावी प्रधानमंत्री के रूप में पेश करने वाले नरेंद्र मोदी का समर्थन करने पर हाल ही में जोए डी क्रूज़ के पहले तमिल उपन्यास *आज़ी सूज़ उलगु* (ओशन रिंग वर्ल्ड) के अंग्रेज़ी अनुवाद के प्रकाशन को रद्द करने का निर्णय किया है. अगर अभिव्यक्ति की आज़ादी पर अंकुश लगाया जाता है तो उस आज़ादी का क्या मतलब है? सन् 1991 में जब भारत ने आर्थिक सुधारों की दिशा में कदम उठाया तो दो बातें लगभग साथ-साथ हुईं. जैसा कि विलियम मज़रैला ने *सैंसरियम* में कहा है, "कई लोगों ने इस कालावधि में सैंसरशिप के संघर्ष को दो विचारधाराओं के बीच टकराहट के लक्षण के रूप में माना हैः एक ओर वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया है, जिसने भारतीय उपभोक्ता बाज़ारों को खोल दिया है जिसके कारण जनसंचार की बाढ़ सी आ गयी है और दूसरी ओर हिंदू राष्ट्रवाद के आक्रामक ढंग से कट्टरवादी रूप की मुख्य धारा में शक्ति के उदय की विचारधारा है. स्पष्ट है कि इस टकराहट ने दो विचारधाराओं के बीच एक नये संघर्ष को जन्म दिया है. यह संघर्ष है सहिष्णुता और धर्मनिरपेक्षता की (संकटग्रस्त) उदार राजनीति और असहिष्णुता की बढ़ती मतांध राजनीति के बीच, जिसके कारण सैंसरशिप की माँग बढ़ती जा रही है."

परंतु हिंदू राष्ट्रवाद असहिष्णुता की बढ़ती प्रवृत्ति का सिर्फ़ एक पहलू है. अभिव्यक्ति की आज़ादी की ज़मीन दिन-ब-दिन सिकुड़ती जा रही है. नये-नये किरदारों की पूरी जमात सामने आ गयी है जो हर बात पर आपत्ति करने लगे हैं. शासन भी पाबंदी के इस खेल में बराबर का हिस्सेदार हो गया है और न्यायालय के निर्णय भी बहुत संतुलित नहीं हैं. *शिवाजी* के लेखक जेम्स लेन का कहना है कि वे न्यायालय द्वारा दिये गये सुझावों के अनुसार संशोधन करने के लिए इच्छुक नहीं थे. उच्चतम न्यायालय ने पुस्तक पर लगी पाबंदी को तो हटा दिया, लेकिन अपने निर्णय में लेन को चेतावनी के स्वर में यह निर्देश भी दे दिये कि वे कुछ अंशों में संशोधन कर लें. लेन ने अभिव्यक्ति की आज़ादी के अधिकार को बरकरार रखा और महाराष्ट्र सरकार ने यह निर्णय सुना दिया कि पुस्तक वापस ली जा रही है, जिसके कारण उसे मराठा समुदाय की सद्भावना मिल गयी.

कई समूह ऐसे हैं, जिनमें अधिकतर धार्मिक समुदाय हैं, जो अपने धार्मिक विश्वासों और अपने नेताओं या उनकी जाति पर कटाक्ष करने वाले लोगों पर पाबंदी लगाने की माँग करते हैं. दीनानाथ बत्रा वह व्यक्ति है, जो

शिक्षा बचाओ आंदोलन समिति के पीछे है और जिसने पैंग्विन को यह सलाह दी थी कि वैंडी डॉनिगर की पुस्तक की सभी प्रतियों को नष्ट कर दिया जाए. उसका कहना था कि हिंदूवाद की गलत और आपत्तिजनक व्याख्या के कारण उसकी धार्मिक भावनाओं को ठेस लगी है और यह भारत के कानून के अंतर्गत अपराध है, लेकिन इसे अपराध तभी माना जाएगा जब न्यायालय में इसे असद्भावपूर्ण आशय के रूप में सिद्ध किया जा सकेगा. डॉनिगर की पुस्तक के मामले में तो पैंग्विन ने बत्रा के दावे का प्रतिवाद भी नहीं किया और पूरी तरह से समर्पण कर दिया. इसी तरह का एक मामला सन् 2012 में सामने आया था, जब दलित समुदाय ने स्कूल की पाठ्यपुस्तक में अम्बेडकर के कार्टून पर पाबंदी लगाने की माँग की थी. इस कार्टून को बाद में पाठ्यपुस्तक से निकाल दिया गया, क्योंकि कांग्रेस के नेतृत्व वाली यूपीए सरकार राजनैतिक दृष्टि से इतने महत्वपूर्ण समुदाय को नाराज़ नहीं करना चाहती थी.

नब्बे के दशक में उदारीकरण के साथ-साथ सूचना का विस्फोट भी हुआ जिसके कारण टेलीविज़न को सरकारी नियंत्रण से बाहर लाने की मुहिम शुरू हो गयी. सरकार इस दिशा में अब तक हुए नुक्सान की भरपाई करने के प्रयोजन से मीडिया पर लगाम लगाने के लिए जब आवश्यक कानून लाने की तैयारी करने लगी तो कॉर्पोरेट जगत् का प्रवेश हुआ. उनकी मिल्कियत के कारण सभी शक्तियों अर्थात् सरकार, राजनीतिज्ञों (इनमें से कुछ लोगों का मीडिया में भी दखल था) और कॉर्पोरेट जगत् के एकजुट होने की प्रक्रिया शुरू हो गयी और कॉर्पोरेट जगत् के लोगों ने विषयवस्तु के प्रदाताओं और समाचार चैनलों की मिल्कियत वाली कंपनियों को एकजुट करना शुरू कर दिया. जब अग्रणी कॉर्पोरेट घरानों और सरकार के बीच के संघर्ष को लेकर कोई प्रैस वार्ता होती है तब किसी की आवाज़ को दबाने के तौर-तरीकों से भी पता चल जाता है कि सरकारी तंत्र और कॉर्पोरेट जगत् में कैसा संबंध है और राष्ट्रीय टेलीविज़न चैनल सरकार को ब्लैक आउट कर देते हैं. जब इस पर विचार करना हो तो यह भी ध्यान रखना होगा कि समाचार पत्रों और टेलीविज़न पर नौ राज्यों के लगभग उनतालीस राजनीतिज्ञों की मिल्कियत या दखल है और लगभग दस बड़े कॉर्पोरेट घरानों का अधिकतर मीडिया पर नियंत्रण है. ऐसी स्थिति में समाचार प्रसारण के संदर्भ में निष्पक्षता की बात करना निरर्थक होगा.

भारत सरकार अभिव्यक्ति की आज़ादी और लोकतांत्रिक सार्वजनिक अंतरिक्ष पर अपना नियंत्रण बनाये रखने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम के माध्यम से नियमन कर रही है. दो वर्ष पूर्व दूरसंचार मंत्री कपिल सिब्बल ने गूगल और याहू के अलावा अन्य मध्यस्थों से कहा था कि वे विषयवस्तु को प्री-सैंसर करें. घृणा से भरे वक्तव्यों पर पाबंदी लगाने के लिए सरकार ने ट्विटर के उन संदेशों पर रोक लगा दी थी जो सरकार और कांग्रेस पार्टी के नेताओं की आलोचना करते थे. यह अधिनियम संसद में बिना किसी लंबे वाद-विवाद के पारित हो गया था. इसके विनियामक उपबंधों पर लोग अदालतों में विवाद कर रहे हैं.
रेडियो पर निजी तौर पर तैयार किये गये समाचारों के प्रसारण पर भारत में अभी-भी रोक लगी हुई है और कानून और व्यवस्था के नाम पर कांग्रेस और भाजपा दोनों ही पार्टियाँ निजी प्रदाताओं द्वारा समाचार तैयार करने के किसी भी प्रयास का विरोध करते रही हैं. टेलीविज़न की तुलना में रेडियो अपेक्षाकृत कहीं अधिक

सस्ता माध्यम है. अख़बार के लिए तो ज़रूरी है कि उसका पाठक पढ़ा-लिखा हो, लेकिन रेडियो एक ऐसा साधन है, जिसे पढ़े-लिखे और अनपढ़ दोनों ही समान रूप में सुन सकते हैं. आज की तारीख़ में कई सामाजिक समूह अदालतों में सरकार से विवादों में उलझे हुए हैं. हम निर्णय की प्रतीक्षा कर रहे हैं.

अनुराधा रमण आउटलुक पत्रिका के राजनैतिक ब्यूरो की वरिष्ठ सह संपादक हैं. वे 'कैसी' के वसंत (स्प्रिंग), 2014 की विज़िटिंग फ़ैलो भी हैं.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार <malhotravk@hotmail.com>